उच्च अध्ययन केंद्र (विश्वविद्यालय अनुदान आयोग) दर्शन शास्त्र विभाग राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर द्वारा दिनांक २२-२३ मार्च २०१७ को “महाभारतीय गीताओं का दार्शनिक लक्ष्य” विषय पर आयोजित अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी के लिए प्रस्तुत लेख -:

लेख का शीर्षक : **गीता में अर्जुन द्वारा अनुभूत अस्तित्वपरक संकट एवं इसका समाधान : आस्था - एक दार्शनिक विवेचन ।**

प्रस्तुतकर्ता : **भीष्म नारायण सिंह**

शोधार्थी, दर्शन शास्त्र विभाग,

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

गीता में अर्जुन द्वारा अनुभूत अस्तित्वपरक संकट एवं इसका समाधान : आस्था - एक दार्शनिक विवेचन

<u>प्रस्तावना</u> -

गीता में अर्जुन जिन प्रश्नों का सामना करता है वे प्रश्न अर्जुन के निज-अस्तित्व को संकट में डाल देते हैं तथा अर्जुन अपने अस्तित्व, अपनी तथ्यता को लेकर जूझ रहा है। अर्जुन के अंतस मे उत्पन्न यह कष्ट आध्यात्मिक कष्ट है। अर्जुन के सम्मुख एक बहुत जटिल प्रश्न उपस्थित होता है कि वह क्या वरण करे- स्वधर्म का पालन(श्रेयस) अथवा निजता की पुकार(प्रेयस)।[1] युद्ध में अपने श्रेष्ठजनों का वध करने में निहित श्रेयस तत्त्व को अर्जुन नहीं देख पा रहा है। प्रस्तुत लेख में इसी तरह के प्रश्नों तथा गीता में उपलब्ध संभाव्य समाधानों तथा उनके व्यष्टिगत प्रभाव को समझने का प्रयास किया गया है। पत्र में इस बिंदु पर भी विचार किया गया है कि अर्जुन का दुःख नैतिक दुःख है या आध्यात्मिक। गीता में अर्जुन कर्ममार्ग(युद्ध) को त्याग कर नैष्कर्म्य तथा वैराग्य के वरण की इच्छा करता है। कृष्ण कर्ममार्ग, ज्ञानमार्ग तथा भक्तिमार्ग तीनों को जीवन जीने तथा मोक्ष प्राप्ति के माध्यमों के रूप में स्वीकार करते हैं। इन तीनों में कौन सा मार्ग श्रेष्ठ है, इसका निर्धारण व्यक्ति द्वारा विशिष्ट परिस्थितियों में धर्म के अनुसार किए गये आचरण से होता है। युद्धभूमि में खड़े अर्जुन के लिये क्षत्रिय वर्ण धर्मानुसार, श्रेष्ठ मार्ग कर्ममार्ग है, युद्ध करने का मार्ग है

---

[1] अस्तित्ववादी चिंतन परम्परा में केंद्रीभूत संप्रत्यय, जिसमें वैयक्तिक आत्मनिष्ठता अथवा आन्तरिकता दार्शनिक चिंतन का आधारभूत अंग है।

Self Attested

तथापि अर्जुन के विषाद के पार्श्व में आत्म-अनात्म भेदाग्रह है। अतः अर्जुन का कष्ट मूलतः नैतिक द्वन्द्व से उत्पन्न न होकर अध्यात्म के अज्ञान से उत्पन्न आध्यात्मिक दुःख है।

अर्जुन के अंतस की गहनतम अवस्था में व्याप्त आध्यात्मिक कष्ट का निवारण करने के लिए श्रीकृष्ण वैश्वानर[2] रूप धारण करते हुए स्वयं को सृष्टि का आदि एवं अंत बताते हुए अर्जुन को बोध कराते हैं कि वह युद्ध में निमित्त मात्र है तथा सब कुछ पूर्व निर्धारित है। कृष्ण तथा अर्जुन में भी अद्वैत है।[3] तदुपरान्त अर्जुन अपने व्यष्टित्व को समष्टि के प्रति समर्पित कर देता है।

<u>मुख्य भाग</u> -

युद्धभूमि में अवस्थित अर्जुन अपने सम्मुख अन्य योद्धाओं को शत्रु के रूप में नहीं देख पा रहा है। भूतकाल में इनमें से कई योद्धाओं के साथ अर्जुन के कुछ विशेष वैयक्तिक सम्बन्ध रहे हैं तथा वर्तमान परिस्थिति में युद्धभूमि में खड़ा अर्जुन इन सम्बन्धों से उत्पन्न भावनाओं को प्रत्यक्षत: अनुभूत कर रहा है। पितामह भीष्म जिनकी गोद में खेलते हुए अर्जुन बड़ा हुआ,जिनके असीम स्नेह और प्रेम की अनन्त अनुभूतियाँ अर्जुन के मन को आच्छादित किये हुए हैं। गुरु द्रोणाचार्य तथा कृपाचार्य जिनसे युद्धकौशल तथा शास्त्रों का ज्ञान लिया। प्रशिक्षण के दौरान स्वाभाविक रूप से गुरु-शिष्य के मध्य गहन भावनात्मक अंत: सम्बन्ध निर्मित हो जाते हैं, जिनकी स्मृति अर्जुन साक्षात् अनुभूत कर रहा है। इस प्रकार युद्धभूमि में खड़ा अर्जुन सम्बन्धों, भावनाओं तथा अनुभूतियों के आवरण में व्याकुलता, हताशा तथा भय का अनुभव

---

[2] श्रीमद्भागवद्गीता: शांकरभाष्य हिन्दी-अनुवादसहित, श्रीहरिकृष्णदास गोयन्दका, गीताप्रेस गोरखपुर; अध्याय ११ ||श्लोक५|| पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः । नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च ।।

[3] वही; अध्याय १० ||श्लोक३७|| वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनंजय: | मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः ||

करता है तथा अर्जुन का शरीर कांपने लगता है और शस्त्र हाथ से छूट जाते हैं।[4] अपने स्वजनों का वध करने में अर्जुन को कुछ भी शुभ नही दिख रहा अपितु केवल अमंगल दीखता है। अर्जुन स्वयं से प्रश्न करता है कि स्वजनों को मारकर किस प्रकार का सुख प्राप्त हो सकता है। अर्जुन इस युद्ध को अनुचित एवं अवरेण्य मानता है।

अर्जुन अपने पितामह, प्रियजनों, मित्रों, आचार्यों आदि को अपने सम्मुख विरोधी योद्धाओं के रूप में स्वीकार करने को तैयार नही है। अर्जुन के सम्मुख इन सभी योद्धाओं के साथ बिताये सम्बन्ध जीवंत हो उठते हैं, जिन्हें वह जीवंतरूपेण अनुभूत करता है। यह अनुभूति अर्जुन के मन में परिताप उत्पन्न कर देती है। अर्जुन अस्तित्वपरक संकट से उद्विग्न हो रहा होता है। अर्जुन अपनी वर्तमान तथ्यता[5] का निषेध कर देना चाहता है तथा अपनी वर्तमान परिस्थिति को भूतकाल में, अपने स्वजनों के साथ बिताये आत्मीय सम्बन्धों में विगलित कर देना चाहता है।

अर्जुन के सामने दो रास्ते हैं, युद्ध करे अन्यथा युद्धभूमि से पलायन करे। अर्जुन युद्ध छोड़ने के पक्ष में कुछ प्रच्छन्न नैतिक तथा रागात्मक तर्क देता है। उदाहरणार्थ, स्वजन एवं मित्रों का वध करने मे सुख उत्पन्न नहीं होगा अपितु मात्र अमंगल ही होगा, कुल का नाश होगा तथा कुल के नाश के हेतु के रूप में उसे नर्क की प्राप्ति होगी।[6] अर्जुन की वर्तमान मनोस्थिति, युद्धभूमि में पहुंचने से पूर्व की स्थिति से बिल्कुल भिन्न है। युद्धभूमि में पहुंचने से पूर्व की स्थिति में अर्जुन को ज्ञात था कि स्वजनों के विरुद्ध युद्ध करना है किन्तु युद्धभूमि में खड़े होकर वर्तमान क्षण में भूतकाल को अनुभूत करता अर्जुन इसे स्वीकार करने की स्थिति में ही नहीं है कि वर्तमान प्रसूत युद्ध, भूत के तात्कालिक निलंबन की प्रागपेक्षा रखता है।

---

[4] वही; अध्याय १ श्लोक सं. २६ से ३८

[5] युद्ध-भूमि में स्वजनों के विरुद्ध युद्ध करने की वास्तविक परिस्थिति तथा इन स्वजनों के साथ बिताये समस्त सुमधुर आन्तरिक संबंधों की स्मृतियाँ तथा अनुभूतियां

[6] वही; अध्याय१ ||श्लोक ४३|| उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन | नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ||

पूर्व में मेरे द्वारा जो प्रश्न रखा गया था कि अर्जुन का दुःख आध्यात्मिक दुःख है अथवा नैतिक दुःख या फिर दोनों। इसका तदर्थ उत्तर मेरे विचार में यह है कि वस्तुतः दुःख के ये दो प्रकार अवियोज्य है। मूल आध्यात्मिक दुःख आत्मतत्त्व तथा अनात्मतत्त्व में भेद न कर पाना। इसे ही सांख्य की शब्दावली में विवेक अख्याति तथा वेदांत की शब्दावली में मूलाविद्या कहा जाता है। नैतिक दुःख का मूल कर्तव्य-अकर्तव्य का द्वन्द्व है अथवा कर्तव्य-अकर्तव्य अविवेक। दृष्टिभेद से अर्जुन का दुःख नैतिक दुःख इसलिए है क्योंकि वह कर्तव्य-अकर्तव्य के असमाधेय द्वन्द्व से पीड़ित है। किन्तु इसके पृष्ठभूमि पर विचार किया जाये तो यह स्पष्ट हो जाता है कि इस नैतिक दुःख का कारण भी आत्म-अनात्म अविवेक सम्बन्धी आध्यात्मिक दुःख है। मेरे इस आग्रह को और बल प्राप्त होता है कृष्ण द्वारा प्रस्तुत समाधान से। वस्तुतः कृष्ण द्वारा प्रदेशित समाधान का सौंदर्य इस तथ्य में है कि वे अर्जुन को कर्तव्य सम्बन्धी देशना तत्त्व दृष्टि के आधार स्तंभ पर निर्मित कर प्रेषित करते हैं। सरल शब्दों में, कृष्ण कर्तव्य-अकर्तव्य विवेक की समस्या का समाधान आत्म अनात्म के विवेक के द्वारा करते हैं।

कृष्ण एक मनोचिकित्सक कि भांति अर्जुन के अवसाद का परित्राण अनौपचारिक विधि में अनुस्युत औपचारिक तथा कालहीन अंतर्दृष्टि के माध्यम से करते हैं। कर्तव्य निष्पादन की अनिवार्य प्रागपेक्षा- स्वात्मबोध। स्वधर्मबोध असल में हेतुफल है स्वात्मबोध का। कृष्ण की उपचार पद्धति में यह अंतर्दृष्टि सर्वत्र परिलक्षित होती है। कृष्ण कहते हैं कि भौतिक दृश्यमान शरीर चिरस्थायी नहीं है किंतु आत्मा चिरस्थायी एवं नित्य है। शरीर का नाश होने से आत्मा का नाश नहीं होता, आत्मा का नाश कर पाना असम्भव है। आत्मा की सत्ता को मरणशील मानने वाला व्यक्ति अज्ञानी है।[7] इन्द्रियाँ इतनी प्रबल होती है कि वे उस विवेकी पुरुष के मन को भी बलपूर्वक हर लेती

---

[7] वही; अध्याय २ ||श्लोक १९|| य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम् | उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ||

है, जो उन्हें वश में करने का प्रयत्न करता है। सुख व दुःख इंद्रियबोध से उत्पन्न होते है एवं मनुष्य को चाहिये कि वह विचलित न हो। जिसने जन्म लिया है उसकी मृत्यु निश्चित है और पुनर्जन्म भी निश्चित है।[8] कृष्ण अर्जुन को प्रेरित करते हुए कहते हैं कि तुम्हारे सम्मुख खड़े भीष्म, द्रोणाचार्य तथा कृपाचार्य आदि योद्धाओं को मात्र शरीर के रूप में देखो जिसका तुम्हें नाश करना है, शरीर के नाश होने पर भी आत्मा का नाश नहीं होता, क्योंकि आत्मा अजर, अमर, अविनाशी तथा शाश्वत है। तदुपरांत कृष्ण अर्जुन को स्वधर्म एवं निष्काम कर्म की शिक्षा देते हुए वीत, राग, मोह तथा आसक्ति आदि से मुक्त होकर युद्ध करने के लिए कहते हैं।

कृष्ण का पूरा प्रयास युद्धभूमि में खड़े अर्जुन की आंतरिकता में व्याप्त संवेगात्मक पक्ष की प्रबलता को हटाकर बौद्धिक एवं नैतिक पक्ष को प्रधान बनाना है तथा अर्जुन की वर्तमान मानसिक अवस्था तथा विषाद का उपचार करते हुए वर्तमान परिस्थितियों में उसे धर्म के मार्ग(युद्ध) की ओर प्रवृत्त करना है। कृष्ण भलीभांति जानते हैं कि वैयक्तिक रागात्मक अनुभूतियाँ मनुष्य के अंतस को आच्छादित कर लेती है, जिनसे मुक्त होने का माध्यम इन अनुभूतियों का समूल नाश है और युद्धभूमि में धर्म की विजय तथा अधर्म के नाश की यह अनिवार्य शर्त है।

कृष्ण कहते हैं, “अर्जुन तुम पितामह, गुरुजनों एवं अन्य लोगों की आत्मा को नहीं मार सकते अपितु उनके नाशवान अनित्य शरीर को ही तुम मार पाओगे, आत्मा तो अविनाशी है। जिस प्रकार पुराने वस्त्रों को त्यागकर शरीर नये वस्त्र धारण करता है उसी प्रकार आत्मा पुराने जीर्ण शरीर को त्यागकर नये शरीर को धारण करते हुए पुनर्जन्म लेता है। अतः अपने क्षत्रिय धर्म का पालन करते हुए युद्ध करो।”[9]

---

[8] वही; अध्याय २ ||श्लोक २७|| जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च|तस्मादपरिहार्येऽर्थे न तवं शोचितुमर्हसि ||

[9] वही; अध्याय २ ||श्लोक २२|| वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानी गृहणाति नरोऽपराणि | तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्य-न्यानि संयाति नवानि देही ||

यहाँ कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर विचार करना आवश्यक है।

१. क्या अर्जुन को युद्ध भूमि की विशिष्ट परिस्थितियों, जिनमें उसके पितामह तथा गुरुवर जैसे योद्धा विपक्ष में युद्ध करने के लिए खडे हो, का बोध नहीं था ?

२. अर्जुन युद्धभूमि में आने से पूर्व वास्तविकता (कि उसे स्वजनों से युद्ध करना है) को स्वीकार करना ही नही चाह रहा था।

३. अर्जुन द्वारा युद्ध किए जाने के औचित्य तथा युद्ध की अवश्यम्भाविता का संदर्भ तथा उसकी निर्वचना एवं तात्कालिक स्वानुभूति में साम्य की कल्पना कर ली गई थी। अर्थात् अर्जुन द्वारा युद्ध के विचार की कल्पना तथा युद्ध की वस्तुस्थिति की कल्पना में तादात्म्य कर लिया गया था।

४. सम्भवत: अर्जुन युद्धभूमि में आने से पूर्व तक या युद्ध स्थल पर भी युद्ध का कोई विकल्प ढूँढ लिए जाने की सम्भावनाओं पर विचार कर रहा हो।

यहाँ दूसरा बिंदु महत्वपूर्ण तथा विचारणीय है जिसके अनुसार अर्जुन अनुभूत सत्ता एवं वैचारिक सत्ता के भेद को नहीं समझ पाता है तथा जब अनुभूत सत्ता से साक्षात्कार होता है तब अर्जुन का मन अकुलाहट से भर जाता है। वह वर्तमान परिस्थिति में स्वयं को एक योद्धा की तरह नहीं देख पा रहा है तथा योद्धा की तरह देखना भी नहीं चाहता। वह तो एक पौत्र, एक शिष्य, एक दयावान मनुष्य के रूप में स्वयं को देख रहा है। कुल मिलाकर वह क्षत्रिय धर्म से पलायन के विकल्प की खोज अपने चेतन अवचेतन स्तर पर कर रहा है।

धर्म की स्थापना तथा रक्षा नैतिक मूल्य है, जिसके लिए युद्ध करना नैतिक दायित्व है, वहाँ वैयक्तिक आंतरिकता एवं अनुभूतियों का कोई मूल्य नहीं है, जिनका दमन करते हुए धर्म की स्थापना की जानी चाहिए। यहाँ एक महत्वपूर्ण प्रश्न उपस्थापित होता है कि क्या कृष्ण रागात्मक अनुभूतियों से रिक्त मनुष्य की संकल्पना

करते हैं? - निश्चित रूप से नहीं, गीता महाभारत के युद्ध के समय कृष्ण द्वारा कही गयी है जब अर्जुन युद्ध करने(स्वधर्म के मार्ग) से विमुख हो जाता है। गीता किंकर्तव्यविमूढ़ अर्जुन को परिस्थति सापेक्ष श्रेष्ठ मार्ग कर्ममार्ग (युद्ध) का चुनाव करने का आधार प्रदान करती है तथा इन परिस्थितियों में कर्ममार्ग, धर्म की रक्षा नैतिक अनिवार्यता है। कृष्ण स्वयं अपने पूर्व जीवन में वात्सल्य, श्रृंगार तथा सौंदर्य आदि अनुभूतियों का मूर्त रूप कहे जा सकते हैं। अतः कृष्ण रागात्मक अनुभूतियों के जीवन का निषेध नहीं करते है। इसे वृन्द कवि की “नीकी प फीकी लगय बिनु अवसर की बात| जैसे बरनत युद्ध में श्रृंगार रस न सुहात||” वाली उक्ति के आलोक में समझा जा सकता है। अर्जुन, प्रश्न तथा उत्तर की श्रंखला में, समाधान की प्राप्ति के लिए आगे बढ़ता जाता है किन्तु पूर्णतया सन्तुष्ट नहीं हो पाता। अर्जुन की आध्यात्मिक सत्ता अथवा अंतस खण्ड-खण्ड हो जाता है। मनोविज्ञान की शब्दावली में यह संकाय-व्यतिरेक है अर्थात् संज्ञानात्मक, रागात्मक तथा संकल्पात्मक संकायों में अन्वय का अभाव।

अंततः अर्जुन, श्रीकृष्ण को अपनी सत्ता के आध्यात्मिक, नैतिक एवं दार्शनिक अधिष्ठान के रूप में देखता है। अर्जुन को बोध होता है कि निरुपाधिक आस्था ही व्यक्ति को आध्यात्मिक संकट से मुक्त करा सकती है। अर्जुन का कृष्ण में पूर्ण आस्था का भाव उत्पन्न होता है तथा जहाँ पूर्ण आस्था है वहाँ प्रश्नों के लिये कोई स्थान नहीं। आस्था ही व्यक्ति को आध्यात्मिक तनाव से मुक्त करा पाती है। आस्था का अर्थ यदि ‘स्व’ तत्त्व में विश्वास तथा समर्पण के रूप में किया जाए तो इसका एक भिन्न तथा अधिक स्वीकार्य अर्थ प्रकट होता है। आस्था का अर्थ अपने स्वत्व से उद्बुद्ध स्वधर्म के प्रति समर्पण के रूप में किया जा सकता है। श्रीकृष्ण द्वारा विश्वरूप दर्शन के अनन्तर अर्जुन उपनिषदों में प्राप्त सर्वात्मैक्य के बोध से आप्यायित हो उठता है। इस सर्वात्मैक्य के कारण ही वह युद्ध, युद्धभूमि, अनात्म रूप शरीर इत्यादि को अलातचक्र तथा मायावत जान पाता है। अर्जुन अपने खण्डित

अस्तित्व को भगवान में समर्पित कर देता है प्रतिफल के रूप में संकाय-व्यतिरेक अन्वय में बदल जाता है।

उपसंहार-

अर्जुन के आध्यात्मिक अस्तित्व का संकट तथा उसका निराकरण सरल नहीं था तथा अर्जुन को इस आध्यात्मिक कष्ट से बाहर निकालने के लिए स्वयं कृष्ण को भगवान रूप धारण करना पड़ा। आस्था की उपलब्धि अत्यंत कठिन एवं चुनौतीपूर्ण है। कृष्ण के प्रति अर्जुन में असीम श्रद्धा का आविर्भाव उसे इस संकट से बाहर ला पाया। इस प्रकार व्यक्ति के जीवन में घटित होने वाले आध्यात्मिक, धार्मिक, नैतिक कष्टों का निराकरण ईश्वर, समष्टि, स्व-तत्त्व के प्रति पूर्ण समर्पण एवं आस्था द्वारा ही संभव है। यह आस्था कुछ और नहीं बल्कि स्व-पर भेद प्रहाण है, अद्वैतानुभूति है। असल में अस्तित्वपरक अनुभूतियों में व्याप्त प्रश्नों का तार्किक समाधान संभव ही नहीं है। यह तो आन्तरिकता का विषय है तथा आस्था इन प्रश्नों का अतिक्रमण कर जाती है। आस्थावान व्यक्ति इसप्रकार के प्रश्नों में अर्थ ही नहीं ढूंढेगा। वह तर्क-वितर्क को गौण समझता है। इस लेख में मेरा आग्रह इतना ही रहा है कि वास्तविक मानवीय प्रश्नों का समाधान विशुद्ध तर्क से संभव नहीं है। भगवत गीता में इसका प्रमाण दिखता है कि तर्क-वितर्क के उपरांत भी जब अर्जुन अपने धर्म में रत होने के लिए पूर्णतः प्रस्तुत नहीं है, तब श्रीकृष्ण तर्कातीत साधनों का प्रयोग करते हैं। यद्यपि अर्जुन के कष्ट का निराकरण करने के लिए कृष्ण थे किन्तु सामान्य मनुष्य के जीवन में व्याप्त इस प्रकार की समस्याओं का निराकरण कैसे हो? वैयक्तिक अनुभूतियों को जीवन से निकाल देना उचित नहीं है। अंतिम शब्द के तौर पर मैं निम्नलिखित बिन्दुओं का निवेदन करना चाहूँगा:-

१. मेरे अनुसार अर्जुन कि आंतरिकता की टूटन तथा अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न दोनों ही स्थितियों का कृष्ण समाधान नहीं करते अपितु इसका नैतिक तथा तत्त्वमीमांसीय प्रश्नों

में विगलन कर देते हैं। कृष्ण यह निदर्शित करते हैं कि अर्जुन की समस्या वास्तविक ना होकर परिकल्पित है

२. मेरे विचार में श्रीकृष्ण प्रत्येक व्यक्ति के अंतस में आध्यात्मिक सत्ता के रूप में व्याप्त है। व्यक्ति को चाहिए कि वह इस दैवी तत्त्वको अनुभूत करे तथा आन्तरिकता की सत्यनिष्ठता के द्वारा इस आध्यात्मिक सत्ता के साथ अद्वय रूप से जुड़ने का प्रयास करे। इसप्रकार निरंतर अभ्यास से व्यक्ति की आन्तरिकता का विस्तार होता जाता है तथा वह निरंतर आध्यात्मिक अनुभूतियों में निमग्न होता हुआ अस्तित्वपरक संकट से मुक्त हो सकता है या इस संकट को न्यूनतम कर सकता है।[10] इसी से अयं निज: - परो वेति की बाधक धारणा का नाश होता है और इसका प्रतिफल है सोऽहं का साक्षात्कार।

३. अर्जुन का पितामह, गुरुजनों तथा अन्य प्रियजनों के साथ आत्मीयता के सम्बन्ध रहे हैं। आंशिक रूप से इन सम्बन्धों की अभिव्यक्ति का गौण माध्यम शरीर है। आत्मीयता तथा आंतरिकता की अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप मे यह शरीर वस्तुमात्र (जड़) नहीं रह सकता। शरीर निजता की अनुभूतियों के माध्यम से आत्मतत्त्व को अभिव्यक्त करने का प्रयास करता है। अत: इसकी सत्ता को विशुद्ध वस्तु के रूप मे देखना युक्तियुक्त नहीं है। अतः जड़ में भी चेतना का प्रकाश है।

---

[10] सोरेन किर्केगार्ड तथा गेब्रियल मार्सेल जैसे अस्तित्वादियों द्वारा सुझाया गया समाधान, जिसे निरंतर अभ्यास द्वारा आत्मनिष्ठता अथवा आन्तरिकता के विस्तार की आवश्यकता के रूप में देखा जा सकता है।